RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal
(RHIMRJ)
Research Paper

महात्मा गाँधी की सामाजिक न्याय की अवधारणा : अस्पृश्यता निवारण के विशेष संदर्भ में

महेन्द्र कुमार शर्मा

शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान विभाग, जयपुर (राज.)

शोध सारांश– भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था एवं जाति प्रथा के प्रति गाँधी के विचारों के तथ्यपरक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि गाँधी ने सांस्कृतिक मूल्यों के समर्थन के साथ–साथ उन सभी मान्यताओं का खण्डन किया है, जो मानव के भूलभूत अधिकारों के विरोध में दिखलाई पड़ते है। राजनीतिक आवश्यकताओं एवं बाध्यताओं से परे हटकर यदि हम गाँधी के विचारों का मूल्यांकन करें तो यह स्पष्ट होता है कि गाँधी पहले ऐसे विचारक है, जिन्होंने समग्र के हित चिंतन के लिए विकृतिपूर्ण व्यवस्था से प्रभावित लोगों को मानवतावादी जीवन जीने के योग्य बनाने का प्रयास किया।

संकेताक्षर– अस्पृश्यता, सामाजिक न्याय, वर्ण, छुआछूत, समानता।

शोध विस्तार– भारतीय समाज की परम्परागत संरचना का ब्रिटिशकालीन स्वरूप कुछ विशिष्ट विकृतियों से परिपूर्ण था जिसमें विकृतिपूर्ण जाति व्यवस्था, व्यवसायिक अस्पृश्यता की दशायें और व्यक्ति का व्यक्ति के द्वारा कुछ सुनिश्चित दशाओं में शोषण उल्लेखनीय है। जाति व्यवस्था ने जहां समाज को विभिन्न जातियों एवं उपजातियों में व्यवसाय के आधार पर अलग–अलग समूहों में विभक्त कर रखा था, वहीं जाति से संबंधित व्यवसायों को धार्मिक प्रतिबद्धता के अनुरूप पवित्रता एवं अपवित्रता की कोटियों से भी सम्बद्ध कर रखा था ऐसी स्थितियों में जाति विशेष के सदस्य व्यवसाय विशेष से सम्बद्ध होने की स्थिति में या तो पूज्य थे या उन्हें स्पर्श करना भी अपवित्र माना जाता था। दक्षिण भारत के अधिकांश राज्यों में यह स्थिति अमानवीय स्तर तक पहुंच चुकी थी। उत्तर और मध्य भारत में भी अस्पृश्यता की वैचारिकी प्रभावी स्थिति में थी। इस प्रकार की दशाये भारत में व्यक्ति के उन मूलभूत मानवीय अधिकारों को प्रतिबंधित करती थी जिससे वह सामान्य जीवन का परिवेश प्राप्त कर पाता। तात्पर्य यह कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से असमान स्थिति में था। यह असमानता केवल सामाजिक प्रतिष्ठा और परिसम्पत्तियों के स्वामित्व तक ही सीमित नहीं थी, अपितु जाति विशेष का सदस्य होने के नाते वह मानव होने के अधिकार से भी वंचित था। यह जातियॅा उस कोटि की थीं जिन्हें वर्ण व्यवस्था से भिन्न अथवा वर्णेतर माना जाता था। इस प्रकार तत्कालीन भारतीय समाज में मानवाधिकारों को संरक्षित करने की प्रधान आवश्यकता थी। इस पृष्ठभूमि में अस्पृश्यता निवारण से संबंधित गाँधी के विचार व रचनात्मक कार्य महत्वपूर्ण स्वीकार किये जा सकते है।

अस्पृश्यता से संबंधित समस्या का बोध गाँधी को 12 वर्ष की अल्पायु में ही हो चुका था। उनकी माता उनके घर में सफाई करने वाले मेहतर को तथा स्कूल में अस्पृश्य जाति के सहपाठियों को छूने से मना किया करती थी। उस समय वे अपनी माँ के निर्देशों का पालन करते थे, किन्तु बड़े होने पर उन्हें समाज में व्याप्त इस सामाजिक अन्याय को देखकर अत्यन्त क्षोभ हुआ और उन्होंने खुलकर अस्पृश्यता की निन्दा प्रारम्भ की। अस्पृश्यता के विरोध में उनकी भावना का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि यदि हिन्दू शास्त्रों में अस्पृश्यता का अनुमोदन है तो उनका वह परित्याग करने को तत्पर थे। उन्होंने सनातन धर्मावलम्बियों से कहा कि शास्त्रों की समग्र दृष्टि में तथा उनका सार अस्पृश्यता के व्यवहार को समर्थित नहीं करता। अस्पृश्यता को उन्होंने हिन्दू समाज का कलंक बताया और हिन्दू समाज का फोड़ा कहकर इसकी भर्त्सना की।[1] गाँधी यह स्पष्ट रूप में स्वीकार करते है कि यदि कोई सिद्ध करे कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का एक अंग है तो वे हिन्दू धर्म के विरूद्ध विद्रोह करने में हिचकिचाहट नहीं करेंगे। मेहतरों के व्यवसाय के साथ जो हीनता की भावना जुड़ी थी उसे दूर करने के उद्देश्य से गाँधी जी ने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने शौचालय की सफाई करे। उन्होंने कस्तूरबा से शौचालय की सफाई करायी तथा आश्रम में रहने वालों को आश्रम की सफाई स्वयं करने को कहा। उन्होंने आश्रम में एक अछूत परिवार को प्रवेश दिया।[2]

गाँधी छूआछूत को केवल हिन्दू धर्म के लिए ही नहीं अपितु समस्त मानव जाति के लिए कलंक स्वीकार करते थे। उनकी दृष्टि में जन्म से कोई मनुष्य अपवित्र नहीं हो सकता, अपवित्रता लोगों की आंतरिक मनःस्थिति में निहित होती है। बुरे विचार ही अपवित्र और अस्पृश्य है। पवित्र तो केवल वहीं है, जो ईश्वर से डरकर चलता है, और उसकी सृष्टि की सेवा करता है। उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता मानव समाज के एक वर्ग को सामाजिक सेवा के दायरे से पृथक कर देती है, इसलिए वह एक अमानवीय संस्था है। स्पष्टः गाँधी अस्पृश्यता निवारण के प्रयास में व्यक्ति के उन मूलभूत मानव अधिकारों को प्रस्थापित करना

चाहते थे जो उसे एक समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त होना चाहिए। उन्होंने डिण्डीगुली की सार्वजनिक सभा में 19 सितम्बर 1921 को दिये गये अपने भाषण के अन्तर्गत अस्पृश्यता के संबंध में उस मानवीय अधिकार की उपलब्धता सुनिश्चित करने पर बल दिया था जिससे प्रत्येक मानव समता का अधिकार प्राप्त कर सके।

अस्पृश्यता निवारण के प्रति गाँधी की प्रतिबद्धता का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि उन्होंने इसे आध्यात्मिक स्तर पर भी स्पष्ट करने का प्रयास किया। गाँधी के विचार में चूंकि प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर का ही अंश है, अतएव उसका जन्म अस्पृश्य के रूप में नहीं होता। ऐसी स्थिति में किसी को जन्म से अस्पृश्य स्वीकार कर लेना न केवल मानवता के प्रति अपराध है, अपितु यह उस सत्य की भी अवहेलना है जो शाश्वत है। गाँधी के इन विचारों को उनके विभिन्न भाषणों और लेखों में देखा जा सकता है। अस्पृश्यता निवारण की दशा में उन्होंने भारतीय समाज में इसकी स्थिति का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया कि अस्पृश्यता विकृतिपूर्ण मानसिक सोच है, जो जाति विशेष के सदस्यों के प्रति सक्षम लोगों द्वारा निर्मित कर ली गई है। इसलिए उन्होंने अस्पृश्य जातियों के लोगों को हरिजन नाम दिया और उन्हें वह धार्मिक अधिकार उपलब्ध कराया जिसकी अनुपलब्धता में वे अस्पृश्य बने हुए थे। इस संबंध में हरिजनों का सवर्ण हिन्दू मंदिरों में प्रवेश एक महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जायेगी।[3]

अस्पृश्यता के प्रति लोगों की मनोवृत्ति परिवर्तित करने के लिए गाँधी ने दिन–प्रतिदिन के जीवन में घटित होने वाली घटनाओं एवं वैयक्तिक व्यवहार से संबंधित क्रियाओं के विभिन्न उदाहरण दिये है। उनका कहना है कि अस्पृश्यता एक मानसिक अव्यवस्था की देन है, वस्तुतः जिस कार्य को करने के कारण कोई व्यक्ति अस्पृश्य माना जाता है, वह कार्य सामान्यतः सभी लोग प्रतिदिन या कुछ विशेष स्थितियों में सम्पन्न करते है।[4]

गाँधी की दृष्टि में छूआछूत दूर करने के लिए हर हिन्दू को चाहिए कि वह हरिजनों को अपनाये और उनके साथ दोस्ती बढ़ाये और उनके सुख–दुःख में भाग ले। वस्तुतः गाँधी प्रत्येक भारतीय को समान अधिकार प्रदान करने के पक्षधर थे जो उसे एक मानव होने के नाते तथा एक समाज का सदस्य होने के नाते प्राकृतिक रूप से सुलभ होना चाहिए। अस्पृश्यता निवारण के अभाव में वह स्वराज को भी एक अर्थहीन शब्द मानते थे। उनका यह मानना था कि यदि भारत से अस्पृश्यता का उन्मूलन नहीं हुआ तो इसकी बीस प्रतिशत जनसंख्या राष्ट्रीय संस्कृति और तद्जनित विकास के लाभांशों से वंचित रह जायेगी, उनकी दृष्टि में: बुनकर बुनता रहे, चमार चमड़ा कमाता रहे, और भंगी पाखाना साफ करता रहे, तब भी वह अछूत न समझा जाय तभी हम कह सकते है कि अस्पृश्यता का निवारण हुआ।[5]

इस दिशा में गाँधी ने अस्पृश्यता निवारण को सामाजिक समानता के उद्देश्य हेतु प्रारम्भिक व आवश्यक साधन के रूप में स्वीकार किया। गाँधी ने न केवल वैयक्तिक स्तर पर अस्पृश्यता विरोध किया, अपितु इसकी परिधि में आन्दोलन सभाये व गोष्ठियाँ भी की। तात्पर्य यह कि गाँधी न केवल भारत में अस्पृश्यता की प्रथा को विघटित करने में सहयोग दिया, अपितु उन्होंने उन भूलभूत समस्याओं के प्रति लोगों को जागरूक किया।[6]

गाँधी का विश्वास था कि भंगी, चमार आदि को अछूत कहना, उनसे कोई संबंध न रखना, और उनसे प्रेम न करना मानवता के प्रति अन्याय है। कर्म से कोई छूत और अछूत नहीं हो जाता व कर्म से कोई ऊँच और नीच नहीं हो जाता। अस्पृश्यता वर्णाश्रम धर्म से नहीं अपितु, यह ऊँच–नीच की भावना से उत्पन्न हुई है। अतः यह भावना अनुचित है, किन्तु वर्णाश्रम धर्म अनुचित नहीं है। ऊँच–नीच की भावना को नष्ट कर देने से अस्पृश्यता का निवारण भी हो जायेगा और वर्णाश्रम धर्म भी बना रहेगा।[7] इस प्रकार गाँधी उस मौलिक अधिकार का संरक्षण करते है जिससे व्यक्ति में निहित मानवीय मूल्यों को समाज में संरक्षण प्राप्त हो। तात्पर्य यह कि गाँधी के प्रयासों से भारतीय समाज में सभी व्यक्तियों की जाति, जन्म, रंग, भाषा आदि से परे, समानता व स्वतंत्रता का मूल अधिकार प्राप्त हुआ। इस प्रकार उन्होंने मानवाधिकार के आधारभूत उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सार्थक एवं उपलब्धि मूलक प्रयास किया।[8]

निष्कर्ष–

कुछ लोगों का कहना है कि अछूतों का उद्धार तब किया जाय तब कि वे गन्दी आदतों और गन्दे रिवाजों को दूर कर दें किन्तु गाँधी ने बिना किसी शर्त के छूआछूत को नष्ट करने का व्रत लिया। अस्पृश्यता संबंधी अपने विचार को और अधिक स्पष्ट करते हुए गाँधी कहते है कि इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती है कि जिन महान ऋषियों, मुनियों ने वेदों, उपनिषदों, गीता तथा अमूल्य ग्रन्थों का प्रणयन किया और जो समस्त प्राणियों में एक ही आत्मा की सत्ता को स्वीकार करते थे वे कुछ मनुष्यों को अस्पृश्य मानकर उनके साथ अमानवीय तथा पशुवत व्यवहार करने का समर्थन करते थे। वास्तव में यह सत्य तथा तर्क दोनों के विरूद्ध है। अतः अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का आवश्यक अंग मानना और इस आधार पर उसे समाज में प्रचलित रखना निश्चय ही अनुचित एवं निन्दनीय है।[9] इस प्रकार स्पष्ट है कि गाँधी अस्पृश्यता को निन्दनीय तथा अमानवीय अपराध मानते है और किसी भी स्थिति में उसे समाज के लिए स्वीकार नहीं करते। उनका दृढ़ विश्वास था कि यदि हिन्दू समाज में प्रचलित अस्पृश्यता का पूर्ण निराकरण नहीं किया गया तो हिन्दू धर्म का विनाश निश्चित है।

संदर्भ सूची–

1. हरिजन सेवक, 4 मई, 1934
2. यंग इण्डिया, 1 दिसम्बर, 1921
3. गाँधी, रचनात्मक कार्यक्रम, अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, 1951, पृ. 12–14
4. गाँधी, रचनात्मक कार्यक्रम, पृ. 12–14
5. गाँधी, मेरे सपनों का भारत, (संक्षिप्त, सिद्धराज चड्ढा), वाराणसी, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, 1959, पृ. 115–118
6. यंग इण्डिया, 25 मई, 1921
7. के.जी. मशरूवाला (सम्पा.), गाँधी विचार दोहन, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य प्रकाशन, 1962, पृ. 45
8. गाँधी, धर्मनीति, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य, मण्डल, 1947, पृ.150
9. डॉ. वेदप्रकाश शर्मा, महात्मा गाँधी का नैतिक दर्शन, दिल्ली, इन्दु प्रकाशन, 1979, पृ. 77